

---

# सामाजिक समरसता एवं वर्ण व्यवस्था

Speech delivered to political workers and leaders of Scheduled Caste Morcha at Jabalpur in 2002

रघुनंदन शर्मा

**Raghunandan Sharma**

Near Dana Pani Restaurant, Ahead of 12 No. Bus Stop,  
E8, Arera Colony,  
BHOPAL – 462 039, INDIA

Tel.: 0755-4993648

E-mail: [raghunandanbjp@gmail.com](mailto:raghunandanbjp@gmail.com)



## भूमिका

किसी भी व्यक्ति का एक घर होता है, बड़ा हो या छोटा उसकी सुनिश्चित सीमा होती है। उसी प्रकार किसी समाज का घर भी कोई देश होता है, राष्ट्र होता है, उसकी भी सुनिश्चित सीमा होती है। किसी घर के व्यक्ति की सन्तानें उस घर की एवं उसकी सम्पूर्ण चल एवं अचल संपत्ति की स्वाभाविक रूप से स्वामी होती जाती हैं। उस घर की प्रतिष्ठा संपत्ति एवं समृद्धि से उस घर के वंशज, स्वामी प्राकृतिक रूप से जुड़ जाते हैं। ठीक उसी प्रकार उस देश एवं राष्ट्र का समाज भी उस देश का स्वाभाविक स्वामी होता है। उनके वंशज देश की प्रतिष्ठा एवं समृद्धि से आत्मीय रूप से जुड़ जाते हैं। उस देश की कोई भी हानि उस समाज में निराशा पैदा करती है और उस देश के लाभ एवं प्रतिष्ठा की स्थिति उस देश के समाज की प्रसन्नता का कारक होती है।

जिस धरती पर हमारा अस्तित्व है, उस देश, उस राष्ट्र का नाम है – भारत। यह भारत जिनका घर है, वे आर्य, वे द्रविड़, वे शैव या सनातनी, वैदिक, जैन या बौद्ध। मैं इन नामों में कोई अन्तर नहीं करता हूँ। काल के प्रवाह में बनते बिगड़ते नाम हैं या बनते-सुधरते नाम हैं। शब्दों की भिन्नता हो सकती है किन्तु सन्तान या पुत्र कहलाने का अधिकार है इनको। इस घर या देश की प्रकृति प्रदत्त सीमाएं हैं तथा इस देश की इन सन्तानों को स्वाभाविक स्वामित्व प्राप्त है।

जैसे एक घर में अनेक सदस्य होते हैं। सबका काम अलग-अलग होता है, कोई अधिक सम्मान प्राप्त कर लेता है तो कोई कम। परन्तु, सब एक ही घर, परिवार या कुटुम्ब के सदस्य हैं। सब में आत्मीयता है। कोई ऊँचा नीचा नहीं, किसी में भेदभाव, पक्षपात नहीं होता। सबमें अतिशय प्रेम, स्नेह, अपनापन होता है। इसे परिवारभाव कह सकते हैं। मैं देश में रहने वाले समस्त मनुष्यों को इसी भाव से स्वीकार करता हूँ, करना चाहिये। उनकी स्थिति एवं संबंध भी परिवार, कुटुम्ब के समान ही होना चाहिये। हम सब भारतीयों के संस्कार एक हैं, अर्थात् सबकी एक ही संस्कृति है। यही संस्कृति परिवार को भी एकता एवं अपनत्व का बोध कराती है। उसे जोड़े रखती है तथा देश को भी, राष्ट्र को भी जोड़े रखती है।

शिक्षक हो या सफाई का काम करने वाला – हम सभी संस्कृति के एक सूत्र से बंधे हैं। सुतार, लुहार, ताम्रकार, चर्मकार, फौजी, किसान, शिक्षक, पुरोहित, व्यापारी भिन्न-भिन्न वर्ग के हजार लोगों से उनके नाम पूछिये – तो दसों लोग शिवलाल पिता कन्हैयालाल मिल जायेंगे, रामनारायण पिता शिवनारायण मिल जायेंगे, रामसिंह पिता शिवसिंह मिल जायेंगे। अपने को राम या कन्हैया कहने वाले सभी वर्ग में हैं। किसे नाम के आधार पर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, या शूद्र पहचानेंगे। महिलाओं में सीता, कमला, सुशीला नाम की ब्राह्मण की, वैश्य की, क्षत्रिय की या शूद्र की कन्यायें मिल जायेंगी। सभी वर्णों में कई उपनाम भी एक जैसे मिलेंगे। इन सब नामों को सुनने के बाद, भारत में रहने वाले, भारत को जानने वाले से एक शब्द में वर्णन करने को कहा जायेगा, तो वह कहेगा कि ये सब हिन्दू स्त्री-पुरुषों के नाम हैं।

हिन्दू समाज के संस्कार एक से हैं। खान-पान, आचार-विचार रीति-रिवाज, वेश-केश, भाव एवं प्रभाव सबमें भारतीय संस्कृति या हिन्दू संस्कृति की सुगन्ध प्रकट होती है। यह सुगन्ध ही हिन्दू संस्कृति की पहचान है। व्यक्ति के ऊपर जैसे

घर के वातावरण का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार देशवासियों के ऊपर भी देश की जलवायु, भौगोलिक वातावरण तथा अपने पूर्वजों के गौरवपूर्ण इतिहास का प्रभाव होता है। यही प्रभाव संस्कृति की गंध है, सुगन्ध है।

एक कपड़े में गुलाब या चमेली के फूल रख दें। एक कपड़े में हींग-लहसून या प्याज के टुकड़े रख दें। दूसरे दिन प्रातः ये सब वस्तुएं घर के बाहर फेंक दें। कपड़ों को झटक कर तह करके सभी कपड़ों को मिलाकर रख दें। एक कपड़े को उनमें से उठाएं, उसमें से उस वस्तु की सुगन्ध या गंध आयेगी, जो उसमें कुछ समय पूर्व लिपटी हुई थी। वह कपड़ा तो गुलाब-चमेली, हींग-लहसून या प्याज नहीं है, किन्तु संस्कार के कारण, प्राप्त संसर्ग के कारण उसमें उस वस्तु का प्रभाव आ गया है।

इसी प्रकार हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त फैले इस भारत देश की जलवायु यहां के पुरखें-पूर्वजों का विचार, कार्यकलाप, यहां की वेशभूषा, खान-पान, आचार-विचार ने जिस सुगन्ध को अपने में समेटा है तथा यहां की सन्तानों को जो सुगन्ध प्रदान की है, वह सुगन्ध ही हिन्दू संस्कृति है, जो प्रत्येक हिन्दू में विद्यमान है। हिन्दू को समरसता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। वह इसका मोहताज भी नहीं है। इस राष्ट्र को चिरंजीवी एवं शक्तिशाली रूप में देखना है तो हर व्यक्ति को इस संस्कृति के सनातन विचार को अपने आचरण में लाना होगा।

इसी सूत्रसिद्धांत को लेकर जबलपुर में सन् २००२ में अनुसूचित जाति के कार्यकर्ताओं के अभ्यास वर्ग में एक लम्बा भाषण हुआ था। उस वर्ग में उपस्थित सभी बन्धुओं ने इसे लिपिबद्ध करने का आग्रह किया, बार-बार किया। श्री प्रकाश जी सोनकर ने इसे मुद्रण प्रकाशन कराने की हठ की। उनकी उस हठ एवं आग्रह के कारण मैंने अपने उस भाषण को कलमबद्ध किया है।

इस लिखित भाषण को सम्पादित करने का कठिन कार्य श्री अनिल चावला ने किया है। उनके धैर्य, भाषा ज्ञान, तथा दार्शनिक दृष्टि से इसका स्वरूप निश्चय ही निखरा है। मैं उनका आभारी हूँ।

आशा है आप को यह प्रयास उपयोगी लगेगा।

धन्यवाद!



रघुनंदन शर्मा

मार्च, २००६

[raghunandanbjp@gmail.com](mailto:raghunandanbjp@gmail.com)

## सामाजिक समरसता एवं वर्ण व्यवस्था

अनुसूचित जाति मोर्चे के अभ्यास वर्ग में उपस्थित मान्यवर श्री रामनाथ जी कोविद, श्री जगदीश जी भारती, श्री नारायण सिंह जी केसरी, श्री प्रकाश जी सोनकर, तथा उपस्थित सभी सांसद, विधायक एवं प्रादेशिक नेतागण।

हम सब भारत के पुत्र हैं, यहां की सन्तति हैं, अतः प्राकृतिक रूप से समता प्राप्त विषमता रहित बन्धु हैं, यह शाश्वत सत्य है। आज नहीं तो कल सारा संसार इस सत्य को स्वीकार करेगा। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रकवि दिनकर की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में ३० सितम्बर, १९५५ को लिखा "काफी लम्बे इतिहास के अन्दर, भूगोल ने भारत को जो रूप दिया, उससे वह एक ऐसा देश बन गया, जिसके दरवाजे बाहर की ओर से बंद थे। समुद्र और महाशैल हिमालय से घिरा होने के कारण, बाहर से किसी का इस देश में आना आसान नहीं था।" पंडित नेहरू ने प्रकारान्तर से यह स्वीकार किया है कि मानव सभ्यता का उदय भारत में ही हुआ, भारत की सभ्यता का उदय भारत में ही हुआ, भारत की सभ्यता मौलिक सभ्यता है। सभ्यता का सन्देश लेकर भारतीय ही अपना द्वार खोलकर दुनिया की ओर गए, दुनिया के लोग भारत में नहीं आए।



भारत यह एक देश, आर्यावर्त, जम्बूद्वीप, हिन्दुस्तान इन शब्दों से जिस भूखण्ड का परिचय मिलता है, वह यही भारत देश है। यह सचमुच में प्रकृति ने या परमात्मा ने रचा है, निर्मित किया है। बहस्पति आगम के एक श्लोक में भारत के बारे में कहा है कि:—

हिमालय समारभ्य यावद, इन्दु सरोवरम्,  
तं देव निर्मितं देशं हिन्दुस्थान प्रचक्षते ।

इसी प्रकार वायुपुराण में भारत के परिचय का उल्लेख किया गया है:—

उत्तरम् यत समुद्रस्य हिमाद्रैश्चेव दक्षिणम्  
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संतति ।

जब सष्टि के रचनाकार को ऐसे भूखण्ड की रचना की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी कि जहां मानव सभ्यता का विकास किया जा सके, वह संस्कृति एवं जीवन की प्रयोगशाला हो, जहां से सारी पृथ्वी पर लोग संस्कृति का, जीवन जीने की कला का प्रचार प्रसार करने योग्य बन सकें । जिस भूखण्ड में रेगिस्तान हो, सर्वाधिक वर्षा होती हो, सबसे ऊंचें पर्वत हों, सर्वाधिक गर्मी हो, हिमाच्छादित भूमि हो, समुद्र हो, जितने प्रकार की जलवायु पृथ्वी पर है, उतने प्रकार की जलवायु उसी एक देश में हो । जिससे सब प्रकार की जलवायु में रहने का स्वभाव, उस भूमि के वासियों में हो, ऐसी सभ्यता की प्रयोगशाला कहां बने – तो ईश्वर ने उसके लिये भारत को ही चुना ।

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद्ग्रजन्मनः  
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पथिव्यां सर्वमानवाः

मनुस्मृति १२-२०

पृथ्वी के सब मनुष्यों को अपने चरित्र के माध्यम से शिक्षित करने के लिए इस देश ने श्रेष्ठ पुरुषों को जन्म दिया है ।

मैं कुछ बातें और कहकर अपने मूल विषय वर्ण व्यवस्था एवं सामाजिक समरसता पर अपने विचार व्यक्त करूंगा । परमात्मा या प्रकृति ने जितने भी प्राणियों की रचना सष्टि में की है । उनमें मनुष्य या मानव नाम का जीव ही सब जीवों में श्रेष्ठ है । मानव में तथा पशुओं, पक्षियों या प्राणियों में केवल बुद्धि एवं वाणी का ही अन्तर है । ईश्वर ने मनुष्य को विचार करने के लिए बुद्धि दी है तथा व्यक्त करने के लिए वाणी दी है ।

विद्वानों ने, विचारकों ने कहा है:—

आहार निद्रा भय मैथुनंच  
सामान्य मेतत पशुर्भिनराणां  
ज्ञानम् ही एकोमधिको विशेषो  
ज्ञानेन हिना पशुर्भि समाना ।

पेट भरने की सहज प्रवृत्ति, शरीर को ऊर्जा देने के लिए निद्रा लेना तथा आत्मरक्षा के लिए भयभीत या चौकस रहना तथा वंश वृद्धि करने के लिए यौन सुख प्राप्त करना, यह मानव में तथा पशुओं में समान रूप से है । केवल एक विशेषता मानव की है कि वह ज्ञान वाला है । इस ज्ञानी प्राणी की उत्पत्ति कहां हुई । इसके बारे में संसार में अनेकानेक प्रकार से विचार प्रकट किये हैं । कोई शनैः शनैः किसी न किसी प्राणी की प्रजाति से विकसित होकर मानव बना, इस पर विश्वास करते हैं, तो कोई उसी रूप में जिस रूप में अभी मानव है, इस मानव प्रजाति की उत्पत्ति हुई यह मानता है ।

पथी पर मानव का उद्गम कहा हुआ इस पर भी विश्व भर के विद्वानों एवं विचारकों के अनेक मत हैं। हम उसके विस्तार में नहीं जाना चाहेंगे, किन्तु भारत के अनेक विद्वानों का अभिमत है कि हिमालय की उपत्यकाओं में ही मनुष्य का जन्म हुआ है।



राष्ट्रकवि दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय नामक पुस्तक के पृष्ठ २७ पर लिखा "भारतीय इतिहास कांग्रेस के ग्वालियर वाले अधिवेशन (१९५२) में सभापति के पद से भाषण देते हुए डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने यह कहा था कि आदि मनुष्य पंजाब और शिवालिक की ऊंची भूमि पर विकसित हुआ होगा, इस बात के प्रमाण मिलते हैं। मुखर्जी महोदय का यह मत दिखता है कि मनुष्य भारत में ही उत्पन्न हुआ था और इसी देश में उसकी सभ्यता भी विकसित हुई।"

ईसाई मतावलंबी मानव सभ्यताओं के जन्म की गणना को ईसा पूर्व कुछ हजार वर्ष से ही आंकते हैं, वहीं भारत के मनीषी लाखों वर्षों की भारतीय सभ्यता उदय की गणना करते हैं।

जिसमें विचार एवं मनन करने वाला मन हो, वही मानव कहलाता है। यह मानव, भारतीय मत के अनुसार लाखों वर्ष पूर्व सुसभ्य रूप में इसी धरा पर जन्म ले चुका था। भारत की काल गणना में सृष्टि की आयु को चार युगों में बांटा गया है अर्थात् सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर एवं कलयुग। कलयुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार वर्ष, द्वापर की आठ लाख चौंसठ हजार, त्रेता की १२ लाख ६६ हजार तथा सतयुग १७ लाख २८ हजार वर्ष की है। इन चारों को मिलाकर अर्थात् ४३ लाख २० हजार वर्ष का एक देवयुग होता है। ऐसे एक हजार युगों की सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा का एक दिन एवं एक हजार युगों की एक रात होती है। भारतीय संस्कृति, विचारों एवं विचारकों के प्रति अश्रद्धा रखने वाले इस गणित को कपोल कल्पना कह सकते हैं, किन्तु अब जब ब्रह्मान्ड की दूरी करोड़ों एवं अरबों वर्ष एवं प्रकाश वर्ष की बात विज्ञान करने लगा है तो ब्रह्मा के अरबों वर्ष के दिन एवं रात की बात को आज नहीं तो कल स्वीकार करना ही पड़ेगा।

जो सभ्यता या संस्कृति भारत में पैदा हुई और पनपी, उसे आर्य संस्कृति, वैदिक संस्कृति, भारतीय संस्कृति या हिन्दू संस्कृति इन नामों से जाना जाता है। सभ्यता के विकास ने मानव को परिवार में, समाज में परिणित किया और मानव जीवन की तरह ही समाज जीवन की रचना हुई। समाज के जीने या रहने की विधि को या कला को स्वीकार किया। भारतीय विचारकों ने अपने विचारों एवं चिंतन को कंठस्थ किया, लिपिबद्ध किया। इन लिपिबद्ध विचारों को वेद कहा गया है। वेद ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुए, ऐसा बताया जाता है। यदि इस बात को तर्क की कसौटी पर स्वीकार न भी करें तो भी संसार की समस्त सभ्यताओं के विचारों के संकलन में सबसे पुराना संकलन वेद ही है, यह सिद्ध हो चुका है।

पाश्चात्य विद्वानों ने, अपने धर्म, संस्कृति एवं विचारों का भारत में बाजार बनाने के उद्देश्य से, आर्य बाहर से आए, आर्य इस देश के मूलवासी नहीं है, ऐसे अभिमत थोपने का दुष्प्रयास किया। विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने वाले इतिहासकारों एवं लेखकों को प्रभावित करके उनके मुख से भी यह कहलवाने का दुष्प्रयत्न हुआ।

इसके विपरीत अनेक विद्वान लेखक, विचारक दृढ़ता से इस बात पर स्थिर हैं कि भारतवासी कहीं बाहर से नहीं आए, भारतवंशी इसी देश में जन्में, पले तथा सभ्यता के सोपान पर निरन्तर बढ़ते रहे। इस मत के पक्ष में बालगंगाधर तिलक, डाक्टर नीलकंठ, डा० सुनीति कुमार चटर्जी, श्री रामचन्द्र दीक्षित, मैक्स

मूलर तथा श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के अलावा डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० सम्पूर्णानंद, रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य नरेन्द्रदेव एवं राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान हैं।

भारतीय संस्कृति को, इस की समाज व्यवस्था को वेदों ने वर्णित किया है। भारतीय समाज को वेदों में चार वर्णों में विभाजित किया है – विद्वानों में इस बात पर भी अलग अलग मत हैं। किन्तु यह सत्य है, कि चारों वेदों में सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में आरंभिक रचनाओं में वर्ण का उल्लेख नहीं है। इससे यह अनुमान लगाया जाना स्वभाविक है कि प्रारंभ में कोई वर्ण नहीं था या एक ही वर्ण था, वह था वैदिक या आर्य वर्ण। जब वेद में ब्राह्मण वर्ण का उल्लेख आया तो यह विश्वास दृढ़ होता है कि आर्य संस्कृति में प्रारंभ में केवल एक ही वर्ण था अर्थात् सारा समाज ब्राह्मण ही था। महाभारत के शांतिपर्व में इस बात को अधिक स्पष्ट किया है:—

न विशेषो अस्ति वर्णानां सर्वम् ब्राम्हमिदं जगत  
ब्रह्मण पूर्व सष्टं हि कर्मभि वर्णतांगतम्—

१८८-१०

अर्थात्— पहले वर्णों में कोई अन्तर नहीं था, ब्रह्मा जी से उत्पन्न होने के कारण यह सारा जगत ब्राह्मण ही था उसके पश्चात् विभिन्न कर्मों में अंतर के कारण वर्ण भेद हो गया।

काम भोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः  
त्यत्वत्त स्वधर्मा सतांगस्ते द्विजाः क्षत्रतांगता

—शांति पर्व १८८-११

जो ब्राह्मण भोग में लिप्त हो गये, क्रोध करने लगे तथा साहस का परिचय देने लगे, जिनके शरीर का रंग लाल हो गया, वे ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाने लगे।

गोभ्यो वत्ति समास्याय पीताः कष्युपजीविनः  
स्वधर्मानु नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतांगताः

—शांति पर्व १८८-१२

जिन ब्राह्मणों ने गौओं से तथा कषि कर्म से जीविका चलाने की वृत्ति अपना ली और इसी के कारण जिनकी देह का रंग पीला पड़ गया वे ब्राह्मण का कर्म छोड़ने वाले वैश्य स्वभाव के हो गये।

हिन्सावत्प्रिया लुब्धाः सर्व कर्मोपजीविनः  
कष्णाः शौचपरिभ्रहास्ते द्विजाः शूद्रतांगतः

शांति पर्व १८८-१२

जो शौच एवं सदाचार से विमुख हिंसा प्रेमी हो गये जो सिंह के समान आक्रामक होकर आजीविका चलाते चलाते शरीर से काले हो गये वे ब्राह्मण कालान्तर में शूद्र कहलाने लगे।

इसका अर्थ यह है कि हम सभी ब्राह्मण ही थे। सभी एक ही वंश के थे अतः वंशगत भेद करना उचित नहीं है। वर्ण के साथ रंग का उल्लेख करने को कुछ विद्वान उस समय रंगभेद था तथा रंगभेद से ही वर्ण विभाजन किया, ऐसा मत व्यक्त करते हैं, किन्तु ऊंच नीच का भाव नहीं होने से रंगभेद होने के

तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस परिपेक्ष्य में ब्राह्मण की व्याख्या भी गले उतरती है "ब्रम्ह जानाति ब्राह्मणः" अर्थात् जो ईश्वर को जानता है, जो ईश्वर में विश्वास करता है वह ब्राह्मण है।

ऋग्वेद के नवें मंडल तक ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ऐसे तीन वर्णों का उल्लेख मिलता है। वैदिक विद्वान् मंगल देव शास्त्री ने लिखा है कि मूल वैदिक काल में आर्य जनता (विशः) में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का वर्गीकरण नहीं हुआ था। यह भी ध्यान देने की बात है कि समस्त ऋग्वेद में शूद्र तथा राजन्य शब्द केवल एक-एक बार आये हैं।

शूद्र शब्द का उल्लेख ऋग्वेद के १० वें मंडल याने पुरुष सूक्त में हुआ है। जिसे मूल ऋग्वेद के बहुत बाद में लिखा गया है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शब्दों का प्रयोग दुनिया के इस सबसे प्राचीन ग्रंथ में ब्रह्मन्, क्षत्र और विश के नाम से हुआ है अर्थात् उस समय तक, शूद्र नामक वर्ण अलग से पैदा ही नहीं हुआ था। शूद्र वर्ण तो इन्हीं वर्णों में समाविष्ट था। पुरुष सूक्त को छोड़ दें तो ऋग्वेद में चौथे वर्ण का नाम ही नहीं आया। इसी प्रकार, वेदों के समीचिन ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी तीन ही वर्णों का उल्लेख हुआ है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि बाद का उत्पन्न शूद्र वर्ण, तीनों वर्णों में ही सम्मिलित था। कुछ विद्वानों का मत है कि ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र इन तीन वर्णों में से चौथा वर्ण क्षत्रिय बना है। अर्थात् ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र वर्णों में से गुण कर्म का मिश्रण करके याने तीनों वर्णों से कुछ-कुछ गुण लेकर चौथे क्षत्रिय वर्ण की रचना हुई, यह इसके नाम से भी परिलक्षित होता है।

मित्रों, मैं यहां दढ़ता से कहना चाहूंगा कि चारों वर्णों की रचना होने के बाद भी इसमें ऊंच, नीच, श्रेष्ठ या हीन अथवा अस्पश्यता जैसे विकार थे ही नहीं। वर्ण रचना का आधार कर्म था, गुण था, स्वभाव था। इसका आधार जन्म अथवा वंश कुल तो किसी भी तरह से नहीं था। इस बात के प्रमाण शास्त्रों एवं महापुरुषों के वाक्यों के उद्धरण देकर समाज में आई विकृति का जोरदार खंडन करना चाहूंगा।

जो लोग वर्ण व्यवस्था के हजारों जातियों में बदल जाने को स्वीकार करते हैं। वे वर्ण व्यवस्था की मूल भावना के शत्रु हैं। जाति व्यवस्था तो भारतीय समाज व्यवस्था में आई घणित विकृति है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था को उच्च, निम्न में बांटना भी घोर अनीति एवं अन्याय मूलक है। वर्ण व्यवस्था को श्रेष्ठ अथवा हीन वर्ग में गत हजार आठ सौ वर्षों में बदला गया। निहित स्वार्थियों ने भारतीय समाज व्यवस्था को कलंकित किया, कलुषित किया है। मनुस्मृति नामक ग्रंथ को विकृति समर्थक लोग दोष पूर्ण विचारों का आधार मानते हैं। आलोचक भी इसी ग्रंथ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वैसे तो यह ग्रंथ कोई प्रमाणिक ग्रंथ नहीं है, न ही सर्वमान्य है। क्योंकि यह संग्रह भिन्न-भिन्न समय पर, भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा जोड़े गये, विचारों का संग्रह है तथा संपूर्ण ग्रंथ में विरोधाभासी श्लोकों की भरमार है। जो समाज में विग्रह पैदा करने वाले श्लोक हैं, संकीर्णता का प्रतिपादन करते हैं उन सब श्लोकों को ग्रंथ से बाहर कर दिया जाना चाहिये। मैंने इस संबंध में, श्रेष्ठ संतों एवं हिन्दू आचार्यों को पत्र लिखकर मांग भी की है। उन श्लोकों को इस ग्रंथ की मूलभावना का अंग मानना उचित नहीं है। परन्तु मनुस्मृति में चार वर्णों के निर्माण का प्रयोजन संसार का विकास माना है कहा गया है कि:-

लोकानां तु विवद्धयर्थं मुख बाहुरूपादायतः  
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं चनिरवर्ययत्

मनु १(३१)



अर्थात् जिस प्रकार विकसित शरीर में मुख, भुजाएं, उदर तथा पैर होते हैं उसी प्रकार विकसित संसार में या विस्तार पाते हुए जगत के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र निर्मित हुए।



भारतीय दर्शन के लोकप्रिय ग्रंथ गीता में कहा गया है:-

ब्राम्हण क्षत्रिय विषां शूद्राणांच पंरतपः  
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभर्वे गुणैः

गीता-१८-१४१

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र जैसे चार वर्णों का सामाजिक विभाजन व्यक्तियों के कर्म स्वभाव तथा गुणों के प्रभाव अनुसार किया गया है। जन्म को इसका आधार नहीं माना।

गीता में ही श्रीकृष्ण और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं:-

चातुर्वर्ण्यं मया सष्टवा गुण कर्म विभागशः  
तस्य कर्त्तारमापि मां विद्वय कर्त्तारमन्ययम्

गीता ४:१३

भगवान् कृष्ण ने असंदिग्ध रूप से यह व्यक्त कर स्पष्ट कर दिया कि चार वर्णों की रचना जन्म के अनुसार नहीं है, यह गुणों के आधार पर है। गुणों से तात्पर्य प्रत्येक मनुष्य में न्यूनाधिक सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की विद्यमानता से है। इन्हीं गुणों के कम या अधिक मात्र में मानव व्यवहार में प्रकट होने से वर्ण रचना क्रम में निर्धारण होता है।

भाईयों, एक अवधारणा और है, भारतीय अध्यात्म परम्परा में ईश्वर को तीन रूपों में देखा गया है। उत्पत्तिकर्ता के रूप में, जिसे ब्रह्मा नाम दिया है, दूसरा पालन करने वाले के रूप में जिन्हें विष्णु कहा गया है, तीसरा सेवा करने वाला या समापन करने वाला स्वरूप जिसे शिव रूप में (अर्थात् कल्याण करने वाला) स्वीकार किया है। इन तीनों देवों को गुणानुसार भी विभक्त किया है। ब्रह्मा का सतोगुण,

विष्णु का रजोगुण तथा शिव का तमोगुण । सतोगुण से ब्राह्मण वर्ण, रजोगुण से वैश्य तथा क्षत्रिय एवं तमोगुण से शूद्र । यह भी स्वीकार किया गया है कि सतोगुण रजोगुण एवं तमोगुण तीनों के मिश्रण के समुच्चय से जो वर्ण बना, वह क्षत्रिय वर्ण कहलाया ।



मित्रों, चूंकि ये वर्ण ईश्वर के ही गुणानुरूप हैं अतः इनमें उच्च, निम्न का विभाजन करना मूर्खता को ही परिलक्षित करता है । हजारों वर्षों तक चारों वर्णों में कोई भेदभाव उत्पन्न नहीं हुआ था ।

केवल गीता में ही गुण कर्मों के आधार पर वर्ण रचना की बात कही है, ऐसा नहीं है । समाज में महापुरुषों ने, शास्त्रों ने बार-बार कहा है कि "जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् जायते द्विजः" अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जन्म से तो शूद्र ही उत्पन्न होता है, याने मनुष्य मौलिक रूप में प्राकृतिक रूप में तो शूद्र ही है । संस्कार प्राप्त करने के बाद द्विज होता है । जब व्यक्ति को पठन-पाठन, या शौर्य, युद्ध रक्षण अथवा उद्योग व्यवसाय आदि का उसकी स्वभाव या रुचि के अनुसार शिक्षण दिया जावे, संस्कार दिये जावे तब जाकर वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बनता है ।

बन्धुओं, मेरा आग्रह है, अनुरोध है कि किसी को भी किसी कुल में उत्पन्न होने पर निम्न भाव या उच्च भाव से ग्रस्त होने की आवश्यकता नहीं है । जन्म प्राप्त करना, उत्पन्न होने वाले व्यक्ति के अधिकार में नहीं है, उसके हाथ में भी नहीं है, किन्तु संस्कार प्राप्त करना सबके अधिकार में है । अतः संस्कारित होकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करो, अपना स्थान निर्धारित करो । मनुस्मृति का ही एक उदाहरण देना चाहूंगा, जिसमें कहा गया है:-

विप्राणाम ज्ञान तो ज्येष्ठम्  
 क्षत्रियाणाम् तुवीर्यतः  
 वैश्यानामं धान्यधनतः  
 शूद्राणामेव जन्मतः ।

मनुस्मृति २:१५५

ब्राह्मण को अपनी ज्येष्ठता या बड़प्पन ज्ञान से सिद्ध करना होता है, क्षत्रियों को वीरता के आधार पर ज्येष्ठता दिखानी होती है, वैश्यों की धनधान्य या संपत्ति के आधार पर श्रेष्ठता दिखती है, किन्तु शूद्र तो जन्म से ही ज्येष्ठ होते हैं, बड़प्पन वाले होते हैं। अब यह बात भी तो मनुस्मृति में ही कही गयी है। मनुवादी मनुवादी कहकर अच्छे विचारों को भी अग्राह्य कर देना बुद्धिमत्ता नहीं है। “सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय” की उक्ति के अनुसार देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार मनुस्मृति के विकृत एवं कलुषित विचारों को त्याज्य मानना चाहिये और उसके अच्छे विचारों को ग्रहण करना चाहिये, मुझे तो इस में कोई हानि नहीं दिखती। पुरातन काल से अनेक महापुरुषों ने अपने चिन्तन, मनन एवं विद्वता के कारण श्रद्धास्पद स्थान प्राप्त किये हैं। सभी वर्णों में परस्पर, वैवाहिक एवं सामाजिक संबंध थें – इसके अनेक उदाहरण हैं, जो बाद में कहूँगा।

अब प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि क्या वर्ण एवं जाति शब्द का अर्थ एक ही है? सामान्यतः इसका उत्तर मिलेगा कि दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है। कालान्तर में जाति शब्द के प्रचलन ने वर्ण का स्थान ले लिया तथा दोनों समानार्थी हो गये। अन्तर इतना है, कि वर्ण आज तक चार से अधिक नहीं हो पाए, वहीं जातियाँ हजारों हो गयीं, किन्तु उन्हें वर्गीकृत करें तो समस्त जातियाँ चार वर्णों में ही सिमट जाती हैं। संस्कृत में ज का अर्थ उत्पन्न होने या पैदा होना है। जाति शब्द का अर्थ भी जन्म के अनुसार अस्तित्व का रूप है जिसे परिवार, वंश अथवा जनसमुदाय के रूप में समझा जाता है। इसका एक अर्थ वर्ग भी समझा गया है। दूसरे मत में जाति शब्द संस्कृत के ज्ञ धातु से बना है। ज्ञ से ज्ञात शब्द बना जो जानना या पहचानना का बोध देता है। पहचान बताने के लिये ही ज्ञात या ज्ञाति का प्रश्न उठता था, इसी का अपभ्रंश जात या जाति हुआ ऐसा प्रतीत होता है।



मध्यप्रदेश शासन के हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित डॉ० अम्बेडकर की पुस्तक “अस्पश्यता” के पष्ठ ४१ पर उन्होंने लिखा है ‘ऐसा कहा जाता है कि जाति वर्ण व्यवस्था का विकास है। बाद में बताया जायेगा कि यह एक बकवास है। जाति, वर्ण का विकृत रूप है और किसी भी प्रकार से यह विपरीत दिशा की ओर विकास है, किन्तु जाति ने वर्ण व्यवस्था को पूर्ण विकृत कर दिया है, और वर्ण व्यवस्था से वर्ग व्यवस्था ग्रहण कर ली है।’ डॉ० अम्बेडकर ने वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, स्मृतियों तथा पुराणों के उद्धरण देकर वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, शूद्र कौन थे, अस्पश्यता आदि विषयों पर पुस्तकें लिखी है। अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनका अध्ययन विशद एवं व्यापक है। दुर्भाग्य का विषय यह है कि डॉ० अम्बेडकर ने भारत के प्राचीन ग्रंथों एवं शास्त्रों को मूल रूप में नहीं पढ़ा। उन्होंने इन ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद को पढ़ा। उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों, लेखकों, अनुवादकों द्वारा वेदों उपनिषदों एवं हिन्दू शास्त्रों का अपनी भाषा में किये अनुवाद एवं आलोचनात्मक पुस्तकों को पढ़ा, इन पुस्तकों के अध्ययन से डॉ० अम्बेडकर को नकारात्मक दिशा में जाने की ही प्रेरणा मिली।

वर्ण अथवा जातियों की रचना के पश्चात हजारों वर्षों तक परस्पर सामाजिक तथा वैवाहिक संबंध निर्बाध रूप से बने हुये थे। इसके अनेक उदाहरण स्मृतियों में, पुराणों में तथा पुरातन शास्त्रों में भरे पड़े हैं। किसी कार्य के संपन्न करने में न वर्ण बाधक था, न जाति बाधक थी। यहां तक कि वेदों की ऋचाओं की रचना तक में भी व्यक्ति की विद्वता ही प्रधान रहती थी वह किस वर्ण या कुल में उत्पन्न है इसका कोई अर्थ नहीं था। किसी व्यक्ति का किसी जाति या वर्ण अथवा कुल का होने के कारण तिरष्कृत या उपेक्षित होने का किंचित भी भाव समाज में व्याप्त नहीं था। ऋग्वेद काल की सामाजिक व्यवस्था के बारे में छान्दोग्य उपनिषद् की एक कथा में यह कहा गया है कि जनश्रुति को रैक्व ने वेद पढ़ाया था। रैक्व को कर्म के आधार पर शूद्र की श्रेणी में मानना चाहिये। डॉ० अम्बेडकर ने 'शूद्र कौन थे?' नामक पुस्तक में कवष एवं एलुष को शूद्र बताया है जबकि एलुष ऋग्वेद के दशम मंडल के कई मंत्रों के रचयिता थे। वेदकालीन राजा सुदास ने अश्वमेध यज्ञ किया था, उनका राज्याभिषेक ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने किया था। जबकि समाज में आये विकारों के कारण छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के लिए बहुत बाधाएं आईं। शिवाजी क्षत्रिय थे, यह सिद्ध करना पड़ा, तब जाकर उनका राज्याभिषेक हुआ।

लक्ष्मण शास्त्री जोशी ने वैदिक संस्कृति के विकास नामक पुस्तक में अनेक प्रकार के उदाहरण देकर तथा डॉ० अविनाशचन्द्र दत्त ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि वेदों के आरंभिक युग में सभी प्रकार की श्रेणियों से उठकर लोग ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेते थे। दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय नामक पुस्तक में इसका उल्लेख किया है। महाभारत काल तक समाज में इसी प्रकार का समरस आचरण था। महाभारत के एक प्रसंग में कर्ण शल्य से कहता है कि वाहिनक देश में ब्राह्मण ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा नापित बनते हैं और फिर ये ही लोग ब्राह्मण बन जाते हैं।

ऋग्वेद के नवम मंडल के ११२ वें सूक्त में ऋषि कहता है मैं कवि हूँ मेरा पिता वैद्य है और मेरी माता पिसान करने वाली शूद्रा है।



भगवान परशुराम के पितामह ने क्षत्रिय वंश की कन्या से विवाह किया था, एवं उनके पिता ने वैश्य की पुत्री से विवाह किया था। जाबाला का पुत्र सत्यकाम ब्रह्म विद्या का अधिकारी ब्राह्मण समझा गया था, जबकि जाबाला इतना भी नहीं जानती थी कि उसका पुत्र सत्यकाम किस पुरुष के संसर्ग से जन्मा था। कृष्ण द्वैपायन जिन्हें वेदव्यास के नाम से जाना जाता है, जो महाभारत तथा अनेक पुराणों के रचनाकार हैं, वे धीवर जाति की महिला सत्यवती की संतान थे। प्रवास करते हुये पाराशर ऋषि सरिता पार करते समय नाव चलाती हुई निषादकन्या सत्यवती के रूप पर मोहित हो गये तथा दोनों संसर्ग कर बैठे। दाशराज मल्लाह की कन्या सत्यवती कुंवारी थी, अविवाहित थी। तत्कालीन समाज ने अविवाहित कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का सामाजिक तिरस्कार नहीं किया। और न ही उस भटकी हुई कन्या

का समाज ने बहिष्कार किया, अपितु इस मत्स्यगन्धा कुंवारी माता से हस्तिनापुर के नरेश शान्तनु ने विवाह किया था। शूद्र जाति की श्रेणी में गिने जाने वाली माता के पुत्र वेदव्यास ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों में पूजनीय थे। देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ने जिनके चरणों में वन्दन किया उस शूद्र जाति की ऋषि की आप सब संतान हैं, उसके अनुयायी हैं यह तो गर्व करने योग्य हैं, हीनभाव क्यों उत्पन्न होना चाहिये।

त्रेता युग में एक ऋषि और हुए हैं – वाल्मिकी, जिनकी लेखनी एवं मस्तिष्क से सृष्टि का पहला महाकाव्य रामायण प्रकटा है। ऋषि वाल्मिकी के आश्रम में लव कुश ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को

पहुंचने के लिये बाध्य किया था। भगवान श्रीराम ने आश्रम में जाकर ऋषि चरणों में साष्टांग किया था, आप सब लोग ऐसे ऋषियों की संतान हो जिनके चरणों में भगवान श्रीराम नतमस्तक थे। शूद्र जाति में जन्म मिला है, इस कारण स्वयं में हेयभाव उत्पन्न करना ठीक नहीं है। यह हीनता समाज में आयी विकृति का परिणाम है। अपने को इससे उपर उठकर ही व्यवहार एवं आचरण करने की आवश्यकता है। स्वयं भगवान श्रीराम की माता सुमित्रा “वामदेवस्य वभूवकर्णी सुता” थी अर्थात् सुमित्रा के पिता ब्राह्मण तथा माता कर्णी जाति की थी। अपना देश जिसके नाम से जाना जाता है उस भरत के पिता दुष्यंत क्षत्रिय थे, किन्तु माता तो मेनका नामक अप्सरा की पुत्री शकुन्तला थी। भगवान कृष्ण की माता असुर वंश की कन्या थी जबकि पिता वासुदेव आर्य क्षत्रिय थे। भीम ने हिडिम्बा से विवाह किया था जो राक्षसी जाति की थी एवं अर्जुन की एक पत्नी नाग कन्या उलूपि थी। चाणक्य ने राजा चन्द्रगुप्त का विवाह युनानी सेल्यूकस की पुत्री से करवाया था। इन सब वैवाहिक संबंधों को सामाजिक मान्यता दी गयी थी।

बन्धुओं, भारत का प्रत्येक व्यक्ति ऋषियों की संतान है, हम सब किसी न किसी ऋषि के वंशज हैं। ये मोती कश्यप यहां बैठे हैं, सुरक्षित सीट से विधायक हैं, महर्षि वेद व्यास की माता की जाति से हैं, इनका गौत्र कश्यप है। बस्तर के अनुसूचित जनजाति के नेता बलिराम कश्यप भी कश्यप गौत्र के हैं। अनेक ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों की गौत्र भारत में खोजें तो कश्यप गोत्री मिल जायेंगे। ऐसे ही प्रत्येक भारतीय किसी न किसी ऋषि महर्षि की संतान हैं। मैं इस बात को सबकी आलोचना के शिकार ग्रंथ मनुस्मृति से ही सिद्ध करना चाहूंगा। आपको आश्चर्य लग रहा है न, पर मनुस्मृति कह रही है कि आप ऋषियों की संतान हैं। मनुस्मृति के अध्याय ३ के १६७-१६८ श्लोक में बड़ी आनन्द दायक बात कही गयी है:-

सोमपा नाम विप्राणाम् क्षत्रियाणाम् हविर्भुजः  
वैश्यानामाज्यपानाम् शूद्राणाम् तु सुकालिनः  
सोमपास्तु कयेः पुत्र हविषान्तोअगिरः सुताः  
पुलस्यस्याज्यपाः पुत्र वशिष्ठस्य सुकालिनः

ब्राह्मणों के पितर सोमप, क्षत्रियों के हविष्मन्त, वैश्यों के आज्यप और शूद्रों के सुकालिन हैं। सोमप भगुऋषि के पुत्र हैं तथा हविष्मन्त अगिरा ऋषि के पुत्र हैं। आज्यप पुलस्य ऋषि के पुत्र और सुकालिन वशिष्ठ ऋषि के पुत्र हैं।

आप सब को कितना सुखद आश्चर्य हो रहा होगा कि ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऋषि वशिष्ठ के पुत्र सुकालिन शूद्रवर्ण के पितर कहे गये हैं अर्थात् हम सब वशिष्ठ ऋषि के वंशज हैं यह हमारे मन से हीनभाव को निकाल फेंक कर ऋषि संतान होने का गौरव अनुभव करने का क्षण है।

बन्धुओं, हम जाति व्यवस्था के वैवाहिक संबंधों की वर्तमान स्थिति को ठीक प्रकार से जानते हैं। वैदिक काल के अन्तर्जातीय विवाहों के बारे में कई उदाहरणों के साथ विस्तार से चर्चा कर चुका हूँ। तब और अब की स्थितियां कितनी अलग हैं। वर्ण व्यवस्था या जाति व्यवस्था में निम्न वर्ग में हीनभाव एवं उच्च वर्ग में श्रेष्ठभाव स्वभावगत समाज में व्याप्त हो गया है, इसे निकालना पड़ेगा, दूर करना पड़ेगा कम से कम हम तो हीनभाव को अपने अन्तर्मन से निकाल फेंकें।

महाभारत के एक पात्र कर्ण के बारे में सभी जानते हैं कि कर्ण को अपने माता, पिता, कुल, गौत्र आदि के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। कर्ण का लालन-पालन जिस परिवार में, जिन माता-पिता ने किया उनके कारण उसे सूत पुत्र कहा जाता था। वह आत्म विश्वास से भरा योद्धा था।



हममें कर्ण जैसा प्रबल आत्मविश्वास यदि हुआ तो हीनभाव हमें स्पर्श भी नहीं कर पाएगा। कर्ण से जब उसके माता-पिता व कुल के बारे में पूछा जाता है, तो वह स्वभिमान एवं भरपूर आत्मविश्वास से उत्तर देता है:-

सूतो वा सूतपुत्रं वा यो वा कोवा भवाम्यहम्  
देवायतं कुले जन्म, मदायतं तु पौरुषम्

अर्थात् मैं सूत होऊं या सूत पुत्र, मैं यह होऊं, वह होऊं या कोई भी होऊं, जन्म देना परमेश्वर के हाथ में है, किन्तु पुरुषार्थ करना मेरे हाथ में है। शौर्य एवं पुरुषार्थ करने की प्रेरणा कर्ण से ली जा सकती है, क्योंकि व्यक्ति का पुरुषार्थ समाज में उसका महत्व निर्धारित करता है।

एक और विकृति गत हजार वर्ष के अन्तराल में समाज में पनपी है – वह है अस्पश्यता। वैदिक काल में तो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उसके पश्चात् भी लंबे समय तक अस्पश्यता समाज जीवन में प्रवेश नहीं कर पायी थी। हम सबको भगवान श्रीराम के जीवन की वह घटना तो याद होगी जब श्रीराम शबरी के निवास पर गये। शबरी को स्पर्श किया तो श्रीराम ने पैर छूकर, और यही नहीं शबरी के हाथ से उसके चखे हुए झूठे बेर प्यार से खाए। अस्पश्यता की ऐसी शव यात्रा जिस समाज के आदर्श पुरुष ने निकाली हो उसे समाज को देर सबेर इस दिशा में उनका अनुसरण करना ही पड़ेगा। हम सब विश्वास रखें, धैर्य धारण करें।

मित्रों, वर्ण व्यवस्था में विभक्त किए गए कार्य में शूद्र वर्ण को सेवा करने के कार्य दिये गये। सेवा करने के जो भी कार्य हैं, वे शूद्र वर्ण के अन्तर्गत हैं। शूद्र मानी जाने वाली जितनी जातियां हैं, वे अलग-अलग प्रकार के सेवा कार्य करती हैं। जितने भी तरह के सेवा कार्य हैं, उन्हें हेय समझना या निम्न दर्जे का कार्य मानना यह मनोवृत्ति ठीक नहीं है। सचमुच में सेवा कार्यों का भी उतना ही महत्व है, जितना ब्राह्मण के पढ़ने-पढ़ाने के कार्य का महत्व होता है। क्षत्रिय वर्ण का समाज की रक्षा करना एवं राजकाज करना और शूद्र वर्ण का समाज सेवा का कार्य दोनों समान महत्व के हैं। इसी प्रकार वैश्यों का कृषि या व्यापार कार्य भी सेवा कार्य से श्रेष्ठ नहीं है। सेवा कार्यों का अपना विशिष्ट महत्व है, उसे स्वीकार करना चाहिये।



महाभारत में कौरवों को परास्त करने के बाद पांडव विजयोत्सव मना चुके थे। युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया था। उस यज्ञ के अवसर पर एक प्रसंग बड़ा रोचक तथा सुख देने वाला है। कहते हैं, राजसूय यज्ञ की व्यवस्था में सभी पांडवों एवं साथियों ने अपने अपने हिस्से में भिन्न-भिन्न दायित्व बांट लिये। श्री कृष्ण को जब यह ज्ञात हुआ तो वे युधिष्ठिर के पास गये। 'धर्मराज! राजसूय यज्ञ की व्यवस्था में मुझे क्या काम दिया है।' युधिष्ठिर ने कहा सारी व्यवस्था हो गयी है, कन्हैया आप बस निरीक्षण करें कि हम दायित्व ठीक से निभा रहे हैं। श्रीकृष्ण ने कहा कि युधिष्ठिर एक कार्य बचा है। मुझे वचन दो कि वह कार्य मैं करूंगा और केवल मैं अकेला करूंगा, कोई मुझे रोकेगा नहीं। युधिष्ठिर ने स्वीकार किया। कहते हैं राजसूय यज्ञ के पश्चात् भोजन करने वालों की झूठी पत्तल उठाने का कार्य श्रीकृष्ण ने किया। सेवा कार्य को कितना ऊँचा दर्जा दिया, यह अकल्पनीय है। शूद्र समाज के हिस्से भी समाज सेवा का कार्य ही आया है और सेवा से बड़ी आराधना दूसरी नहीं हो सकती, दूसरी साधना नहीं हो सकती। यह पवित्र भाव लेकर सेवा कार्य करें तो मन को सुख ही मिलेगा।



बन्धुओं! सेवा में बड़ी शक्ति होती है। श्रीराम के दरबार की ऐसी ही एक कथा है कि प्रत्येक दरबारी को सेवा के कार्य बाँट दिये। वीर हनुमान को कोई कार्य नहीं दिया गया। हनुमान ने पूछा तो उन्हें कह दिया कि आपको कोई काम नहीं दिया है। आपको जो उचित लगे सो करो। ऐसा कहते हैं कि श्रीराम को जब थकावट से, कार्य के भार से उबासी आने लगे तो उस समय मैं चुटकी बजाऊंगा यह कार्य हनुमान ने स्वेच्छा से लिया। मन में यह लोभ था कि इस कार्य के लिए सदैव श्रीराम के पास रहना पड़ेगा। पता नहीं कब महाराज श्रीराम को उबासी आ जाये। रात्रि को शयन के लिये श्रीराम अपने कक्ष में गये तो हनुमान बाहर रहे। कुछ समय उपरांत महल के शिखर पर चढ़कर बैठ गये। सोचने लगे कब मेरे महाराज को उबासी आ जाये और मैं चुटकी न बजा पाऊं तो हनुमान निरंतर चुटकी बजाने लगे। वहां चुटकी बज रही थी, यहां शयन कक्ष में उबासी की स्थिति में श्रीराम का मुंह फटा का फटा रह गया। जानकी जी को बड़ी चिन्ता होने लगी, परिजनों को बताया तो वे भी चिन्तित हो गये। वैद्य को बुलाया, परन्तु कोई निदान या चिकित्सा संभव नहीं हो पा रही थी। तब संकटमोचक हनुमान को तलाशा गया, वे महल के शिखर पर बैठे, मस्ती से चुटकी पर चुटकी बजाये जा रहे थे। उन्हें बुलाया गया तो उन्होंने चुटकी बजानी बंद की, श्रीराम का फटा मुंह बंद हो गया। सेवा की शक्ति का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

अस्तु, किसी भी कार्य को सेवा के भाव से ग्रहण करें, उसे संपन्न करें तो कार्य बड़ा या छोटा नहीं होता। जब सफलता मिलती है, तो वह सदैव बड़ी होती है। इसलिये समाज का या देश का काम करने वाला, कोई भी हो उसे लोकसेवक कहा जाता है। उसके कार्य को समाज सेवा या देश सेवा कहा जाता है। सीमा पर जाकर युद्ध करने वाला या जंगल में अथवा नगर, गांव में लगी आग को बुझाने वाला देश की एवं समाज की सेवा ही करता है। जो जहाँ भी कार्यरत है, प्रामाणिकता एवं निष्ठा से कार्य कर रहा है तो वह सेवा ही है। इसलिये सेवा कार्य क्षुद्र है, हीन है, यह भाव मन में नहीं आना चाहिये।

अस्पृश्यता बहुत बड़ी बुराई है। यह बुराई हमारे समाज में कब और कैसे आयी यह ठीक से नहीं कहा जा सकता। इसका काल निर्धारण तथा इस दोष के पैदा होने के कारण क्या हैं, यह अलग विषय है,

उसमें मैं नहीं जाना चाहता। किन्तु, आज यह दोष समाज में है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। यह प्रसन्नता की बात है कि जिस प्रकार अर्न्तजातीय विवाह तेजी से बढ़ रहे हैं तथा उन्हें माता-पिता एवं समाज की मान्यता मिल रही है, उसी प्रकार अस्पश्यता, छूआछूत का रोग भारतीय समाज से समाप्त हो रहा है। जितनी शीघ्रता से यह दोष समाप्त होगा, भारत से अलगाववादी, तथा जातिद्वेष के विष को बढ़ाने वालों का बाजार समाप्त हो जायेगा। वे बेरोजगार हो जायेंगे। समय की आवश्यकता है कि जाति प्रथा मिटनी चाहिये, छूआछूत ऊंचनीच का भेद समाप्त होना चाहिये।



जाति प्रथा के विरुद्ध सर्वप्रथम भगवान बुद्ध ने आवाज उठाई। बुद्ध ने हिंसा तथा यज्ञ संस्कृति पर भी प्रश्न खड़े किये। ब्राह्मण उस काल में समाज पर हावी थे। उन्होंने अनेक आडम्बर रच डाले थे। वर्ण व्यवस्था को अपने ढंग से परिभाषित करके वे ईश्वर के पश्चात् द्वितीय स्थान के अधिकारी हो गये थे। अतः महात्मा बुद्ध ने समाज में आयी विकृतियों को सुधारने का कार्य हाथ में लिया। अस्पश्यता, जातिवाद, धर्म के नाम पर हिंसा तथा मिथ्या आडम्बरों के विरोध तथा दुखों के निवारण एवं मोक्ष प्राप्ति की साधना, ऐसे विषयों के प्रचार से तत्कालीन समाज बुद्ध के प्रति आकर्षित हुआ, किन्तु हर सुधारक एवं उसके उपदेशों के साथ जो होता है वहीं बुद्ध के साथ हुआ। उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने समाज सुधार के बुद्ध के उपदेशों के प्रचार को एक नये धर्म का रूप दे दिया।

नवीनता के प्रति आकर्षण ने समाज को नये धर्म की ओर खिंचा। भारतीय जनता बड़ी संख्या में बौद्ध होने लगी। वैदिक धर्म मानने वाले तथा बौद्ध धर्म का पालन करने वालों में संघर्ष को समाप्त करने के लिए वैदिक धर्म के मनीषियों ने बौद्ध उपदेशों का विरोध करने के बजाय उनका समर्थन किया। यही नहीं महात्मा बुद्ध को विष्णु के दस अवतारों में सम्मिलित कर लिया। उन्होंने तर्क दिया कि महात्मा बुद्ध भगवान थे तथा "धर्म स्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे" के लिए ही शरीर धारण किया। धर्म को हानि हो रही थी, धर्म में दोष उत्पन्न हो रहे थे अतः बुद्ध ने उन दोषों को दूरकर धर्म को लाभ पहुँचाने के लिए, सुधार के लिये जो ज्ञान दिया वह एक अवतारी का कार्य था। इस सूझ-बूझ से भारत में बौद्ध धर्म अलग से नहीं फैल पाया। वैदिक धर्म का पालन करते हुये लोग बुद्ध के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा व्यक्त करते रहे। इस घमासान में जातियां समाप्त तो नहीं हुई अपितु उनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ती ही गयी।

मित्रों! मैं यहां यह बताना चाहूंगा कि यह भारत ही है, यह भारतीय संस्कृति ही है, जिसने तत्कालीन प्रचलित धर्म का विरोध करने वाले को स्वीकार किया तथा ऋषि एवं भगवान के स्थान पर स्थापित किया। चाहे वो भगवान बुद्ध हों, भगवान ऋषभदेव हों या ऋषि चार्वाक हों – पश्चिम के देश होते तो, जैसे सुकरात को विष देकर मार दिया, मक्का से मोहम्मद साहब को भागना पड़ा, अपने प्राण बचाने के लिये छिपना पड़ा, वैसी ही बुद्ध की भी दशा होती। या ईसा मसीह को जिस प्रकार सूली पर टांग दिया गया, उसी प्रकार भगवान बुद्ध के साथ भी व्यवहार हुआ होता। भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है,



यहां की वायु एवं जल में ही यह तत्व है, इस मिट्टी का ही यह महत्व है कि गुणों को ग्रहण करें एवं अवगुणों की उपेक्षा कर दो। सहिष्णुता का श्रेष्ठ उदाहरण तो यह है ही।



जैन मत के तीर्थंकर महावीर ने भी समाज सुधार की क्रांति की। भगवान बुद्ध का अवतरण वैदिक समाज की व्यवस्था में कालांतर में आई विकृतियाँ समाप्त करने हेतु आवश्यक था। बौद्ध के अनुयायियों ने अथक प्रयत्न किया कि भारतीय समाज की सभी बुराईयाँ समाप्त हो जायें। काल के पलटवार ने बौद्धों के प्रयत्नों को सफल नहीं होने दिया। बौद्ध स्वयं ही अनेक विकारों एवं दोषों से ग्रस्त हो गये तथा भारत से यह आन्दोलन लगभग समाप्त हो गया। फिर यूनान एवं अरबों की मार ने भारतीय समाज को बेसुध कर दिया। विदेशी आक्रमणकारी प्रारंभ में तो धन-दौलत लूटकर ले जाते थे, किन्तु बाद में अनेक सामाजिक दोषों एवं रोगों से ग्रस्त कमजोर भारत में वे शासक हो गये। तलवार के बल पर विदेशी शासक मतान्तरण भी करने लगे। जातिवाद के जहर ने समाज के उपेक्षित वर्ग को मतान्तरण के लिए प्रेरित किया।

भारत में व्याप्त जातिवाद की विष वल्लरी की जड़े नहीं टूटी। अनेक महापुरुष हुए, अनेक प्रयास भी हुए। हाँ, कश्मीर में एक सार्थक प्रयत्न हुआ। इसका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ सन् १४२० में कश्मीर में हिन्दुओं का संहार करने वाले, समूचे कश्मीर को हिन्दूविहीन कर देने वाले, सिकन्दर बुतशिकन तथा राष्ट्रद्रोही समाजद्रोही सैफुद्दीन (सुहास भट्ट) के शासन की समाप्ति के पश्चात् उसका दूसरा पुत्र जैन-उल आब्दीन सुल्तान की गद्दी पर बैठा। जैनुल आब्दीन कश्मीर के महान वैद्य पंडित श्री भट्ट से प्रभावित हुआ। श्री भट्ट ने सुल्तान के उपर अपने प्रभाव का लाभ लेकर कश्मीर के हिन्दुओं को सभी कष्टों से मुक्त करा दिया। पंडित श्री भट्ट ने हिन्दू समाज में एक क्रान्तिकारी एवं अनुकरणीय चमत्कार किया। नरेन्द्र सहगल ने अपनी धर्मान्तरित कश्मीर पुस्तक के पष्ठ ११८ पर लिखा "कश्मीर में अनेक गौत्र वर्ण इत्यादि थे। मुसलमान शासकों के अत्याचारों से कश्मीरी हिन्दुओं की यह व्यवस्था चूर-चूर हो गयी थी। कश्मीर से भागकर बाहर जाकर बिखर जाना और फिर अत्यन्त दयनीय परिस्थितियों में वापस लौटने से हुई विनष्ट वर्ण व्यवस्था को नया रूप देने की आवश्यकता थी। ऐसी स्थिति में पंडित श्री भट्ट ने सबको एक ही वर्ण, ब्राह्मण, में परिणत कर दिया।"

डॉ० त्रिलोकीनाथ गंजू ने अपनी पुस्तक महाश्री शिर्य भट्ट में श्री भट्ट के इस एतिहासिक एवं क्रांतिकारी योगदान का वर्णन किया है। संभवतः इन उपेक्षित कश्मीरी हिन्दुओं के विकास के संदर्भ को विश्लेषित कराना महत्वपूर्ण नहीं रहा हो परन्तु महाश्री शिर्य भट्ट के इस क्रांतिकारी सुधार ने भावी कश्मीर के इतिहास के नहीं, अपितु भारत के समस्त हिन्दू समाज के लिए एक वैज्ञानिक समाज शास्त्री की तरह, अपने युग से एक हजार वर्ष आगे की तरफ देखकर इस वर्णविहीन एक-वर्ण (कश्मीरी पंडित) समाज का गठन किया। आश्चर्य तो यह है कि जिस सुधार के शंखनाद को शतकों के उपरांत भक्ति आन्दोलन, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, और विश्व हिन्दू परिषद आदि ने कार्यान्वित करना चाहा, उसको युगद्रष्टा श्री भट्ट ने १४२० ईसवी में त्रिकालद्रष्टा की तरह देखकर कदम उठाया था। आज अपना देश, संपूर्ण समाज को ऐसे ही समरस कर देने वाले प्रतिभावान व्यक्तित्व की प्रतीक्षा कर रहा है।

जातिवाद एवं अस्पश्यता के दोष से अनेक लोग युद्ध करते रहे। देश के भिन्न-भिन्न भागों में महापुरुषों ने इस बुराई को समाज से उखाड़ फेंकने का यत्न किया। कौन कितना सफल रहा यह गौण है। समाज, संस्कृति एवं देश को बचाने के उनके प्रयास ही महत्वपूर्ण हैं। किसी ने उपदेश दिया तो किसी ने व्यवहार एवं अपने आचरण में लाकर इस बुराई से निपटने का यशस्वी कार्य किया।

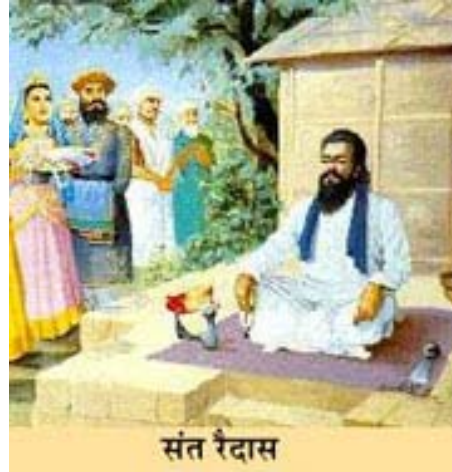


राजस्थान के मेवाड़ राजघराने की राजरानी मीराबाई का नाम हम सबने सुना है। मीराबाई के जीवन की एक कथा है। मीराबाई को अनेक विद्वान संतों के सत्संग का अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु गुरु के रूप में उन्होंने किसी को भी नहीं माना। वे एक सच्चे गुरु की खोज में थी। तीर्थाटन करते हुये बनारस में एक झोपड़ी में उन्हें एक संत की जानकारी मिली। सन्त जी भगवान के भजन गा रहे थे, तथा चमड़े के टुकड़े काट काट कर जूतियाँ बनाने का काम कर रहे थे। एक क्षण को यह दृश्य देखकर मीराबाई ठिठकी, किन्तु मधुर कर्णप्रिय भजन ने उनको आंगन में खिंच ही नहीं लिया, अपितु बैठने को बाध्य हो गयी। भक्त रैदास के भजनों में मीरा खो गयी। उस समय एक और प्रभावशाली व्यक्ति वहाँ आए उन्होंने भक्त रैदास को कहा, रैदास! तुम प्रभु के अनन्य भक्त हो, किन्तु निर्धन हो, तुम्हारा जीविका चलाने के लिये श्रम करने में ही बहुत समय चला जाता है। लो यह पारस पत्थर है जब चाहो लोहे को छूना, सोना बनेगा तुम्हारी आर्थिक दुर्बलता दूर होती रहेगी। भजन गाते-गाते रैदास ने पारसमणि देनेवाले सज्जन को हाथ से इशारा किया। झोपड़ी के छत के कोने में रख दो। वे सज्जन भी चले गये, भजन समाप्त हुये, मीराबाई भी चली गयी।

कई दिनों बाद मीराबाई तीर्थाटन से वापस लौट रही थी। विचार आया कि भक्त रैदास के भजन का आनंद लेते हुये चलना चाहिये। वे रैदास की झोपड़ी में गयी। महीनों पूर्व पारस पत्थर पाने वाले रैदास की झोपड़ी अब महल में बदल गयी होगी, यह कल्पना करते हुये मीराबाई रैदास के आवास पर पहुँची। वे चकित थी कि रैदास की झोपड़ी वैसी की वैसी ही है। मीराबाई भजन सुनने की व्यग्रता में रैदास को प्रणाम कर बैठ गयी। संयोग से थोड़े समय बाद वही सज्जन रैदास के आवास पर आए तथा अधिकार भरे आक्रोश में बोले, रैदास ! रहा तू चमार, का चमार पारसमणि हाथ आने के बाद भी तू जूते ही बना रहा है।

भक्त रैदास ने विनयपूर्वक हाथ जोड़े, महात्मन् आपकी पारसमणि वहीं धरी होगी, जहां आपने रखी है। मैंने तो उसे स्पर्श भी नहीं किया, आगे भी ऐसा विचार नहीं है, बुरा न मानें आप उसे वापस ले पधारें। यह कहकर रैदास बैठ गये। वे सज्जन पारस पत्थर को वहां से निकालकर चले गये। मीराबाई उठी

और वे रैदास के चरणों में झुककर बोली मैं जिस गुरु की खोज में थी, वैसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं कर्म का साक्षात् स्वरूप मुझे मिल गये। आप वचन दो कि मुझे निराश नहीं करेंगे, मुझे गुरु दीक्षा आपसे ही लेना है।



संत रैदास

मेवाड़ की महारानी मीरा ने रैदास को गुरु माना। डॉ० धर्मवीर ने संत रैदास का निर्वाण सम्प्रदाय नामक अपनी पुस्तक के पष्ठ ६७ पर इसका उल्लेख किया है। स्वयं मीराबाई ने अनेक पदों में यह स्वीकार किया है:-

झांझ पखावज वेणु बाजियो,  
झालर नो झंकार !  
काशीनगर मां चौक मा मनें,  
गुरु मिला रोहीदास !!

तथा

मीरा सत्गुरुदेव की करे वंदा आस  
जिन चेतन आतम कहया धन भगवन रैदास ।

अन्य एक पद में और अधिक स्पष्ट किया है

गुरु मिल्या रैदास जी, दीनी ज्ञान की गुटकी !  
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्हा सुरत सहदाना !!

मित्रों! यह हम सबके लिये मस्तक ऊँचा करके गर्व करने का विषय है कि जिस महर्षि के पावन चरणों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने नतमस्तक किया, वे ऋषि वाल्मिकी; जिसके चरणों में योगिराज श्रीकृष्ण ने साष्टांग किया; वे वेदव्यास, उनकी हम संतान हैं। कुछ सौ वर्ष पूर्व भारत के सर्वश्रेष्ठ राजकुल की महारानी मीराबाई जिसके चरणों में बैठकर गुरु दीक्षा लेती हो, ऐसे रैदास के वंशज या अनुयायी कहलाने में हीनभाव नहीं आनन्द का एवं गर्व का अनुभव होना चाहिए।



भक्त रैदास को मीराबाई ने यूँ ही अपना गुरु स्वीकार नहीं किया। उनकी प्रतिभा, उनकी विद्वता, निष्काम भक्ति भावना, आचरण की पवित्रता ने उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाया था। उनका एक भक्ति पद उनके विचार एवं दर्शन को अभिव्यक्त करने के लिये पर्याप्त है:-

एसा चाहौं राज मैं जहां मिलै सबन को अन्न !  
छोटे बड़ों सब समबसै रविदास रहे प्रसन्न !!

सम कऊं ईसर जानि कै जऊ पूजहि दिन रैन !  
रविदास तिन्हहि संसार मंह, सदा मिलहि सुखचैन !!

रविदास जन्म के कारनै होत न कोऊ नीच !  
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे करम कौ कीच !!

नीचन कोई पाएनां, नीच न कोई गाम !  
नीच ताही को जानिएं करै नीच को काम !!

नीच नीच सब तर गए, रामचरण लवलीन !  
जाति के अभिमान से, डूबे सकल कुलीन !!

रैदास के इन ४-६ दोहों में उनके महान व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। वे कैसा राज्य चाहते हैं उनके राजनैतिक चिन्तन व दर्शन की झलक हमें मिलती है। सामाजिक व्यवस्था एवं आध्यात्मिक समन्वय भी प्रकट होता है तथा समाज सुधारक की भूमिका को निर्भीकता से वहन करने की इच्छा शक्ति भी दिखाई देती है। संत रैदास को उस युग की महान प्रतिभा कहा जाना उचित है। उनके विचारों को प्रचारित करने के उस काल में साधन होते तो वे अपनी जीवितावस्था में ही युग प्रवर्तक मान लिये जाते। समरस, सुखी समाज की रैदास जी की कल्पना ऊँच नीच की धूर्त भावना पर तीखा प्रहार है। नीच के मोक्ष प्राप्त कर लेने तथा जाति की श्रेष्ठता के अंहकार से ग्रस्त होने पर डूब जाने की बात, कितनी आत्म विश्वास से युक्त है। जो हम सबके लिए प्रेरक है।

बन्धुओं! एक बात और कहना उचित एवं प्रासंगिक ही होगा। डॉ० अम्बेडकर ने अपने तर्कसंगत प्रबन्धों में अनेक विषयों पर शास्त्रों, एवं प्राचीन ग्रंथों के श्लोकों एवं सूत्रों को आधार बनाकर अपने अभिमत को सिद्ध किया है। अपने प्रबंध "शूद्र कौन थे" के अध्याय आठ में वे कहते हैं "मेरे पास यह सिद्ध करने के लिए ठोस एवं अकाट्य साक्ष्य हैं कि मूलतः भारतीय आर्यों में केवल तीन वर्ण ही थे। मेरी यह स्थापना कि शूद्र क्षत्रिय थे, सन्देह से परे नहीं माना जायेगा।" डॉ० अम्बेडकर की इसी पुस्तक के अध्याय नौ के

अन्त में बैचेनी प्रकट हुई है कि “किस प्रकार शूद्रों को दूसरे से चौथे वर्ण में पदच्युत अथवा निम्नीकृत कर दिया गया था।”

चौथे क्रम पर शूद्र का रखा जाना मैं तो वरिष्ठता का ही प्रतीक मानता हूँ। चार आश्रम में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास जो चौथे क्रम पर है जोकि सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं महत्वपूर्ण है। चार पुरुषार्थ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से चौथे क्रम पर मोक्ष पुरुषार्थ ही सर्वाधिक श्रेष्ठ है। किसी सार्वजनिक, सभा या विद्वत गोष्ठी में सबके अन्त में सबसे श्रेष्ठ एवं विद्वान वक्ता को ही आमंत्रित किया जाता है। अतः चतुर्थ क्रम को निम्नीकृत का आधार मानना यह ठीक दिशा में किया गया विचार नहीं है।

भाईयों! सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ० अम्बेडकर ने एक और महत्वपूर्ण आपत्ति प्रस्तुत की कि “शूद्रों की उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से हुई।” ऋग्वेद में कालान्तर में जुड़े पुरुष सूक्त में यह वर्णन है, जिसे मनु ने अपनी स्मृति में पुनः प्रतिपादित किया है। कुछ लोग शरीर सिद्धांत में मनुष्य देह के अधोभाग में पैरों को शूद्र का प्रतीक मानते हैं। हम इन प्रस्तुतियों को मानें या न मानें, मैं इसमें किसी पक्ष के प्रति आग्रह नहीं करूंगा। हाँ! इसमें से भी हीनभाव मन में लाना उचित नहीं है, यह आग्रह अवश्य करूंगा।

शरीर में सर्वाधिक महत्व तो पैरों का ही है, मनुष्य ही नहीं कोई भी प्राणी पैरों के कारण गतिशील रहता है। भवन की नींव की तरह देह का आधार पैर हैं। भारतीय संस्कृति में चरणों एवं चरणामत का ही महत्व है। भगवान के मुख प्रक्षालन के जल से अधिक चरण प्रक्षालन के जल को पावन माना है, अमृततुल्य माना गया है। चरणरज एवं चरणधूलि को ही अधिक श्रेष्ठ कहा गया है। भगवान राम के वन गमन को रोकने के लिये भरत ने राम की बहुत मनुहार की, परन्तु जब वे विवश हो गए तथा श्रीराम ने भरत को प्यार से समझाकर लौटा दिया तो भरत ने उनके मुकुट, धनुष बाण को प्रेरक प्रतीक के रूप में प्राप्त नहीं किया। भरत ने श्रीराम की चरण पादुका को स्वीकार किया। वे उसे ही शिरोधार्य करके चले गये।

हमारे यहां महापुरुषों, संतो, आचार्यों के पाद पूजन की ही परिपाटी है। चरण पूजन को ही महत्वपूर्ण माना है। इनका शीश पूजन, भुजा या उदर पूजन नहीं किया जाता। कन्या के विवाह के समय बारात लेकर आए दामाद के भी पैर पूजन की परम्परा हमारे समाज में है, अनेक जातियों में यह प्रथा विद्यमान है। तुलसीदास ने श्रीराम की आराधना में कहा है:—

श्री रामचन्द्र कपालु भजमन, हरण भवभयदावरुणम् !

नव कंज लोचन कंजमुख कर कंज पद कंजारुणम् !!

अर्थात् संसार के भयावने संकटों को हरने वाले श्रीराम को भजते समय, भगवान के पावन अंगों की तुलना करते हुए आंखों को भी कमल कहते हैं, मुख की भी कमल से ही तुलना करते हैं, हाथों की भी कमल से तुलना करते हैं तथा पैरों की भी कमल से ही तुलना करते हैं। समभाव का इससे सुन्दर प्रकटीकरण और क्या हो सकता है? भारत भूमि सदैव समन्वय भूमि रही है। संघर्ष का विचार भारत का मौलिक विचार नहीं है। हम जब प्राणी मात्र में परमात्मा के दर्शन करते हैं, तो ऊंच- नीच या छूत-अछूत का भाव मन में कैसे ला सकते हैं। यह दोष है, विकार है, जो हमारी संस्कृति या हमारी धरा में नहीं उपजा है। मौलिक चिन्तन तो समानता का ही है। ईशावास्योपनिषद का यह सूत्र :-

ऊँ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यांजगत !

अर्थात् जगत में जो कुछ जड़ चेतन है उस सबमें ईश्वर का निवास है। 'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म' इस सूत्र का अर्थ भी यही है कि प्रत्येक में ब्रह्म का अस्तित्व है। अणु-अणु में ब्रह्म है। भारतीय दर्शन के उदार एवं व्यापक विचारों में संकीर्णता का लेशमात्र भी स्थान नहीं दिखता है। किसी में ईश्वर का अंश है, किसी में नहीं है कोई ईश्वर से दूर है या कोई ईश्वर के पास है – यह भेद तो पैदा ही नहीं होने दिया। सब में वही व्याप्त है, सबको उसी का अंश मानने का समान अधिकार प्राप्त है। इसीलिये तुलसी के मुख से सहज निकलता है:—

सियाराम मय सब जग जानी,  
करहुँ प्रणाम जोरी जुग पानी !

जगत के प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का वास है, मैं उन सभी को प्रणाम करता हूँ। जब सभी में परमात्मा का वास है तो कोई बड़ा, छोटा या ऊँचा नीचा, छूने योग्य या छूने के अयोग्य कैसे हो सकता है। यदि हम सबकी समानता पर विश्वास नहीं करते तो एक प्रकार से परमेश्वर का अनादर करते हैं।

'कण्वन्तो विश्वम् आर्यम्' का उद्घोष जब हमारे पूर्वजों ने किया था तो उसके पीछे भी यही भाव था कि हम सारे विश्व को श्रेष्ठ बनायेंगे, सभ्य बनायेंगे। समाज में व्याप्त बर्बरता, पशुता समाप्त करेंगे। वैरभाव उत्पन्न नहीं होने देंगे। जब सभी श्रेष्ठ होंगे तो कौन बड़ा, कौन छोटा या कौन उँचा, कौन नीचा, समाज रचना में इन बातों का कोई स्थान नहीं रहेगा। विस्तारवाद जैसा ओछा विचार तो इस उद्घोष के पावन स्वर को छू भी नहीं गया था। यदि कोई ऐसा आरोप लगाता है तो वह मनुष्य निरा मूर्ख ही हो सकता है। प्रत्येक को आर्य या श्रेष्ठ बनाने की भावना के पीछे एक सुदृढ़, सुसभ्य समाज की रचना करना तो था ही, किन्तु प्रबल समरसता व्याप्त हो, यह विचार एवम् दृष्टि भी इस उद्घोष में निहित थी।



मित्रों ! आप सबने बाल कृष्ण का वह स्वरूप देखा होगा, जिसमें छोटे से सलौने सुन्दर शिशु कृष्ण लेटे हैं तथा अपने हाथों से पैर को पकड़कर, पैर के अंगूठे को चूस रहे हैं। यह कृष्ण का स्वरूप हमें कल्पना करने के लिए प्रेरित कर रहा है कि शूद्र के प्रतीक पैरों को, क्षत्रिय के प्रतीक दोनों हाथों से, प्यार से वैश्य के प्रतीक उदर पर रखकर, ब्राह्मण के प्रतीक मुख से पैर के अंगूठे को चूस रहे हैं।



करार विंदेन पदार्विन्दम मुखारविंदे विनिवेशयंतम ।  
वटस्य पत्रस्य पुटेशयानम बालमुकुंदम शिरसानमामि ।।

समन्वय का समरसता का अद्भूत दृश्य है। यही भारतीय संस्कृति की समरस वर्ण व्यवस्था है। शरीर के अंगों के परस्पर स्नेहपूर्ण संबंध का इससे सुन्दर दृश्य दूसरा नहीं हो सकता। समन्वय का, समरसता का कितना मनोहारी स्वरूप है यह। प्रसन्नता की बात है कि समाज में बहुत तेजी से ऊँच नीच एवं छूत अछूत का भेद मिट रहा है। आज कई संगठन, संस्थाएं एवं राजनैतिक दल अनुसूचित वर्ग या पिछड़े वर्ग को सशक्त बनाने या उपर उठाने के नाम पर आगे आ रहे हैं। दुःख का विषय यह है कि वे ऊँच-नीच, छोटे-बड़े एवं भेदभाव को समाप्त करने के स्थान पर जातिवाद के प्रेत को अधिक ताकतवर बना रहे हैं। जातिवाद की जड़ों को घणा के विष से सींच रहे हैं। इसमें ऐसे संगठनों का ध्येय देश या समाज का हित करना नहीं, क्षणिक स्वार्थ है। कई राजनैतिक दल स्वार्थवश जातिवाद को सुदृढ़ कर रहे हैं। किन्तु काल का प्रवाह, समय के थपड़े जातिवाद के विष को समाप्त करने हेतु लगातार लग रहे हैं। हजारों वर्ष का यह रोग ईश्वरीय इच्छा से ४०-५० वर्षों में भारत से समूल उखड़ जायेगा।



स्वामी विवेकानंद ने भारत भ्रमण करते समय भयानक सामाजिक विषमता के दर्शन किये। वे सोचते थे – प्राचीनतम भारतीय शास्त्र छूआछूत की बात नहीं करते। फिर, इस देश में अस्पृश्यता की अमानवीय स्थिति क्यों निर्मित हो गयी? यह बीमारी कैसे आयी है कि लोग मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते? उन्होंने देखा कि “सारे देश को पण्डे, पुजारियों, पुरोहितों ने कर्मकाण्ड के मायाजाल में उलझा रखा है।” इस देश को इस महामारी से मुक्ति पाना है तो, अंधविश्वासों, कुरीतियों एवं कृपथाओं से मुक्ति पाना होगा। स्वामी जी ने देश का भ्रमण करते समय भंगी, चमार, डोम या निम्न कही जाने वाली जातियों के व्यक्तियों के घर का, उनके हाथ का भोजन आनंद से ग्रहण किया ।

स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण परमहंस के एक जन्मोत्सव पर पिछड़ी जाति के युवकों का उपनयन संस्कार किया। उन्हें ब्राह्मण बनाकर उनकी पूजा की तथा समाज में प्रतिष्ठित बनाया। स्वामी जी ने महात्मा गांधी तथा डॉ० अम्बेडकर से ५० वर्ष पूर्व सामाजिक समरसता का पावन अभियान प्रारंभ कर

दिया था – वर्ग संघर्ष को आधार बनाकर नहीं, स्नेह एवं प्यार को आधार बनाकर। डॉ० ओम नागपाल ने अपनी पुस्तक विश्व विजेता सन्यासी स्वामी विवेकानंद के पष्ठ ७६ पर लिखा “अस्पश्यता समाप्त करने तथा दलित उत्थान करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? क्या वर्ग संघर्ष करना? वह तो समाज को तोड़ने के समान होगा। तो फिर स्वामीजी ने सुझाया, इसके लिये दो दिशाओं में कार्य हो। एक तो बार-बार साधु, संतों सन्यासियों द्वारा छूआछूत के विरुद्ध विचार व्यक्त किये जाये। जनता के धर्मगुरु, उनके बीच जाकर बार-बार समझाएं कि अस्पश्यता पाप है, सनातन धर्म के विरुद्ध है और दूसरा दलितों को सुशिक्षित किया जाये। उन्हें धर्मशास्त्र पढ़ाए जायें। तभी उनका सामाजिक एवं आर्थिक स्तर उँचा उठेगा। यदि दलित लोग विद्वान और पंडित होंगे तथा वे समाज में अच्छे पदों पर होंगे तो वे भी ब्राह्मण हो जायेंगे। समाज उनका भी आदर करेगा। ब्राह्मणत्व कर्मणा है, जन्मना नहीं।” छत्तीसगढ़ अंचल में एक महात्मा हुए हैं – गुरु घासीदास। वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था की बुराई को समाप्त करने का उन्होंने भी भरपूर प्रयत्न किया। कश्मीर के पंडित भट्ट की तरह उनका आह्वान था – सब ब्राह्मण बन जाओ; ईश्वर ही सत्य है तथा आचरण की पवित्रता ही जीवन है; हमारे लिए संसार में यही एकमात्र सत्मार्ग है।



महात्मा गांधी ने स्वराज्य के आन्दोलन के साथ छूआ-छूत के विकार को मिटाने के लिये स्तुत्य प्रयास किये। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी इस प्रयास में लगा है। अपनी अद्वितीय कार्यपद्धति से समाज को समरस बनाने, एकरस करने में, प्रचार से परे होकर जुटा हुआ है। संघ के ही एक स्वयं सेवक रमेश पंतगे ने एक पुस्तक लिखी है – ‘मैं मनु और संघ’। पुस्तक में अपने संघ संस्कारों के व्यवहार जगत को सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं, “मेरा सार्वजनिक जीवन संघ में ही बीता। संघ में न जात का संबंध आता है और न अस्पश्यता का। स्वयं सेवक किस जात का है, यह संघ में अर्थहीन प्रश्न समझा जाता है। सालों तक एक साथ काम करते रहने के बाद भी स्वयं

सेवकों को एक दूसरे की जात का पता नहीं रहता। उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं होती।”

अपने देश में, अपने भारतीय समाज में सामाजिक समरसता निर्माण करने के लिए सभी को कुछ निश्चय करना पड़ेंगे। व्यवहार में, आचरण में, भाषा में, भावों में उन्हें प्रकट करना होगा। तथाकथित उच्च वर्ग या सवर्णों को, अपने उच्च होने के कारण, अन्यो को हेय समझने के भाव को पास भी फटकने नहीं देना होगा। यदि हम इस देश से प्यार करते हैं, यदि यह संस्कृति हमें प्रिय है, यदि हम इस देश के समाज को तथा भारतीयता को जीवित रखना चाहते हैं, यदि हम इस देश को दीर्घायु देखना चाहते हैं, यदि संस्कृति की सुरक्षा चाहते हैं तो जीवन में हम ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना सदैव के लिये त्याग दें। संपूर्ण भारतीय समाज मेरा परिवार है, यही एक भाव, देश, हिन्दुत्व एवं संस्कृति को जीवित रख सकेगा।

आज मैं ब्राह्मणों को नहीं कहूंगा कि देश के सभी ब्राह्मण एक हो जाओ, अपने छोटे-मोटे भेदों को मिटा दो। यह बात न क्षत्रियों को कहूंगा, न वैश्यों को कहना चाहूंगा। किन्तु! आज, मैं अनुसूचित जाति के समस्त भाईयों को अवश्य कहना चाहूंगा कि आप तथाकथित सवर्णों या ऊँची जातियों पर कोई दोषारोपण करने के पहले अपने गिरेबान में झाँकें। अपनी अर्न्तआत्मा को टटोलें कि हमारे यहां कितने



भेद हैं। कितनी तरह की जातियाँ हैं, जिन्हें छोटा समझा जाता है, क्यों? पहले हम तो अपने भेदभाव समाप्त करें, आपस के अन्तर को खत्म करें। हम पहले एक हो जाएं। यह नाई है, धोबी है, ढोली है, तेली है या यह कुम्हार है, यह मेहतर या मोची है, कोई एक दूसरे के घर का पानी नहीं पीता, खाने की बात तो बहुत दूर है। आओ! पहले अपने मन को साफ करें, अपने तन को साफ करें, हमारी अपनी गन्दगी मिटाएं, गन्दे भेदभावों को समाप्त कर, एक हो जाएं। हमारे आचरण की पवित्रता तथाकथित सवर्णों से भी ऊपर कर लें। फिर देखें! हमारी ओर हेय दृष्टि किसकी जाती है। हमारा घर साफ सुथरा हो, भले ही छोटा हो। हमारे कपड़े भले फटे हों, किन्तु साफ हों, धुले हुए हों। हमारा भोजन, खानपान सात्विक हो। दूसरों के प्रति विनम्रता एवं आदर के भाव हों। क्रोधी एवं अपराधी विचार हमसे कोसों दूर हो। सदा अध्ययनशील हों, गुण ग्रहण की प्रवृत्ति हो। यदि हमने यह कर लिया तो संपूर्ण समाज के साथ हम एकरस, समरस दिखाई देंगे।

अपने आपको निम्न कुलवंश में उत्पन्न हुआ समझने वाले, अथवा अनुसूचित जाति, या जनजाति वर्ग के जो बन्धु, स्वयं को दलित, शोषित, उत्पीड़ित वर्ग का मानते हैं, उन्हें अपने मन से यह बात सदैव के लिये निकाल देना चाहिए; हीनभाव को पास भी फटकने नहीं देना चाहिए। साथ ही अपने खान पान को पवित्र एवं सात्विक रखना चाहिए। साफ-सफाई, व्यवहार एवं आचरण की श्रेष्ठता जीवन में दिखानी होगी। दुर्व्यसन, बुराईयों से परिवार को दूर रखना होगा। शबरी के झूठे बेर में परमानंद प्राप्त करने वाले श्रीराम, यज्ञ के पश्चात महाभोज में जनता की झूठी पत्तल को उठाने में सुख का अनुभव करने वाले श्रीकृष्ण, ऋषि वाल्मिकी, वेदव्यास एवं भक्त रैदास के अनुयायी बने रहने का संकल्प लेकर समाज में सभी को आदर प्रकट करने का भाव उत्पन्न करना होगा। अपने ज्ञान, अध्ययन तथा परिश्रम से समाज में अपना स्थान निर्धारित करना होगा, स्वयं को समाज में एकरस कर देना होगा।

अंत में पुनः कहूँगा कि वैदिक समाज के मूलस्वरूप में अस्पृश्यता, जातिवाद, ऊँचनीच जैसे दोष नहीं थे। कश्मीर में पूज्य श्री भट्ट ने जातिविहीन समाज की रचना कर दी, भगवान बुद्ध ने भी जातिवाद की विष बेल को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न किया। सिख पंथ के गुरुओं ने भी जाति व्यवस्था एवं अस्पृश्यता की बुराई को टुकरा दिया। स्वामी विवेकानंद जी, महात्मा गांधी जैसे अनेक महापुरुषों ने प्रयत्न किया तथा समाज को समरस, एकरस करने हेतु अथक श्रम किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भी देशभर में समरसता का वातावरण बनाने का बीड़ा उठाया है। समय भी द्रुतगति से हमारा साथ दे रहा है। अतः उठो! मन से हीन भाव को मिटाकर समरस समाज निर्माण करने में जुट जाओ, भारत का उज्ज्वल भविष्य इसी में निहित है।

रघुनंदन शर्मा



## जीवन परिचय

नाम	रघुनंदन शर्मा
जन्म तिथि	७ अप्रैल १९४६
शिक्षा	एम० ए० (राजनीति विज्ञान), १९६८ विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन आयुर्वेदरत्न, १९७२ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
नौकरी १९६६-१९७४	उच्च श्रेणी शिक्षक, व्याख्याता एवं उपप्रधानाचार्य गाँधीसागर बाँध उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, १९७४ में नौकरी से त्यागपत्र

### राजनैतिक जीवन

१९७७ जनता पार्टी	गरोट विधानसभा क्षेत्र से विधायक निर्वाचित
१९७८ जनता पार्टी	जिला महामंत्री, जिला मन्दसौर
१९७९-८० जनता पार्टी	जिलाध्यक्ष, जिला मन्दसौर
१९८० भाजपा	संगठन मंत्री के रूप में कार्य प्रारंभ
१९८०-८५ भाजपा	संभागीय संगठन मंत्री, रतलाम संभाग
१९८६-२००० भाजपा	प्रदेश कार्यालय मंत्री तथा प्रदेश कार्यसमिति सदस्य
२०००-२००६ भाजपा	प्रदेश उपाध्यक्ष (मध्य प्रदेश)

### लेखकीय जीवन

१९७४	पहला लेख 'स्टालिन के पथ पर इन्दिरा' दैनिक स्वदेश, इन्दौर में प्रकाशित पिछले तीन दशकों में लगभग पाँच सौ लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित
२००२	ज्वलंत प्रश्न - सेकुलर जवाब, राष्ट्रवादी सोच नामक विचारोत्तेजक पुस्तिका अर्चना प्रकाशन, भोपाल द्वारा प्रकाशित काँग्रेस के दलित एजेण्डा में निहित राष्ट्रविरोधी वक्तव्यों एवं तत्त्वों का पर्दाफाश करने वाला लेख प्रकाशित।